International Journal of Humanities and Social Science Research
ISSN: 2455-2070; Impact Factor: RJIF 5.22
www.socialsciencejournal.in
Volume 3; Issue 8; August 2017; Page No. 47-49

प्रकृति मूलक औषधियाँ एवं चिकित्सा कर्म (बौद्ध साहित्य के आलोक में)

संध्या

शोध छात्रा, प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरात्तव विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, भारत।

प्रस्तावना

आयुर्वेद भारतवर्ष का लोक उपयोगी, जनजीवन से नित्य प्रति संबद्ध प्राचीन चिकित्सा शास्त्र है, जो पुरातन काल से भारतवासियों की रक्षा करता आ रहा है। बौद्ध साहित्य में विविध विधाओं के साथ–साथ आयुर्वेद का भी वर्णन मिलता है। जिसमें मानव के रोगों के निवारण का ही नहीं वरन पशु पक्षियों एवं वृक्षों के रोगों के निवारण का भी वर्णन मिलता है। आयु की वृद्धि करने वाला वेद आयुर्वेद कहलाता है। भारतीय परम्परा के अनुसार ऋषि–मुनियों ने निरोगी काया प्रदान करने के लिए अनेक औषधियों, योग, व्यायाम आदि का वर्णन किया एवं शरीर को स्वस्थ रखने के अनेक उपचार बताऐं। चरक, च्यवनप्राश, जीवक, सुश्रुत जैसे ऋषि मुनि औषधि विज्ञान का पूर्ण ज्ञान रखते थे। सुश्रुत संहिता में उल्लेख है "आयुस्मिन विधते, अनेन वास्स्युर्विन्दि्न्त इत्यायुर्वेद" अर्थात जिसमे आयु के हितकर और अहितकर का विचार हो, और जो दीर्घायु प्राप्त कराता हो वह आयुर्वेद है। प्राचीन काल में आर्युवेद विज्ञान एक महत्वपूर्ण विज्ञान था, जिसका महत्व भारतीय ही नही अपितु विदेशी भी पूर्ण रूप से जानते थे। उन्हे ज्ञात था कि दैनिक जीवन में प्रयुक्त होने वाली साधारण सी वस्तुयें जो प्रकृति से प्राप्त होती है, हमारे लिये औषधि का कार्य करती है एवं मानव शरीर को स्वस्थ रखने के लिये सभी प्रकार की रोग मूलक औषधियॉ प्रदान करती हैं, रामायण में लक्ष्मण के मूर्छित होने पर संजीवनी बूटी देने के उल्लेख प्रकृति एवं मनुष्य के पारस्परिक सामंजस्य का एक उदाहरण है।

ललितविस्तर मे उल्लेख मिलता है कि बुद्ध के जन्म के साथ ही रोगी अपने रोगों से मुक्त हो गये, अर्थात उनका जन्म एक जीवनदाता के रूप में हुआ, एक साकारात्मक जीवन दायिनी शक्ति का संचार हुआ[2] और यही दृष्टिकोण चिकित्सा विज्ञान के प्रति आकर्षण उत्पन्न करने में सहायक सिद्ध हुआ। उन्होने मानव जीवन में दुख, दुखः की सत्ता, उसके कारण एवं निवारण का मार्ग प्रशस्त किया। उनकी ये शिक्षायें चिकित्सा विज्ञान के महत्वपूर्ण पहलू प्रतीत होती है। जिनका उल्लेख मानव जाति को आध्यात्मिक एवं वास्तविक सुख की प्राप्ति कराना एवं आत्मिक उपचार करना है।[3] गौतम बुद्व ने तत्कालीन समाज एवं बौद्ध भिक्षुओं की एक चिकित्सक की भांति सहायता की, स्वयं अपने स्वास्थ्य एवं अपने साथी भिक्षुओ का ध्यान रखने के लिए प्रोत्साहित किया[4] एवं समाज के हेतू वाद के लिए उपदेश दियज्ञ[1]

जातक ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि वैद्य चिकित्सा कर्म को एक व्यवसाय के रूप में करते थे।[5] राजा द्वारा उनके वैद्यकुलो को सहायता प्रदान की जाती थी, वैद्य भी राजा की चर्या करते थे।[6] मिलिन्दपञह से ज्ञात होता है कि कुशल एवं योग्य चिकित्सक के पास असाध्य रोग से पीड़ित लोग बड़े विश्वास के साथ जाते थे।[7] चिकित्सा कर्म सीखने के लिये शिष्य योग्य चिकित्सक को ढूढते एवं उसके उपरान्त उनका शिष्य बन सम्पूर्ण विद्या प्राप्त करते, जैसे कि छुरी कैसे पकड़नी चहिए? चीरा कैसे लगाना चहिए? घाव को साफ कैसे करना चाहिए? उस पर मल्हम कैसे लगाना चाहिए? रोगी को उल्टी (वमन) कैसे करानी चाहिये?, और कैसे औषधि देनी चाहिये? ये सभी बातें पूर्ण रूप से सीख जाने के बाद ही स्वस्तंत्र रूप से किसी रोगी की चिकित्सा करने की अनुमति प्रदान की जाती थी।[8] औषधि विज्ञान पर अनेक ग्रन्थ उपलब्ध है और इन ग्रन्थों में औषधि विज्ञान की गणना 19 शिल्पो में की गई है।[9] बुद्ध को एक वैद्य की संज्ञा दी गई जो पीड़ा होने पर उचित उपचार के माध्यम से रोगो का निवारण कर देते है और उचित अवसर आने पर ही उपदेश रूपी औषधि प्रदान करते।[10] *मिलिन्दपञह* में अनेक वैद्य आचार्यो नारद, धन्वन्तरी, अंगीरास, अतुल आदि का उल्लेख मिलता है जिससे ज्ञात होता है कि कुशल वैद्य सभी प्राचीन ऋषियों का एवं[11] चिकित्साशास्त्रों का गहन अध्ययन करते थे और एक कुशल चिकित्सक बनते थे।[12] वे शल्य चिकित्सा का भी पूर्ण ज्ञान रखते थे। चिकित्सा विज्ञान को प्रोत्साहन देने के लिए, जो शिष्य चिकित्सा में प्रवीणता हासिल करता था, उसे पुरस्कृत भी किया जाता था।[13] इसके अतिरिक्त चिकित्सा कर्म में ओझाओं का (भूत वैद्यो) का भी उल्लेख मिलता है[14] जो अमनुष्य रोग (भूत–प्रेत) का उपचार करते थे।[15] *मिलिपदञह* के रचना काल तक चिकित्सा विज्ञान का कार्य क्षेत्र मनुष्यों तक ही सीमित न रहकर पशुओं तक पहुँच गया था। अशोक के अनेक अभिलेखो में उल्लेख मिलता है कि उसने मनुष्यों एवं पशुओ को औषधियॉ उपलब्ध करवाई एवं जो औषधियॉ उपलब्ध नही थी उन्हें बाहर से लाकर विभिन्न स्थानों पर आरोपित करवाया।[16]

मनुष्य के अस्वस्थ होने के अनेक कारणों का उल्लेख मिलता है, उसका स्वभाव भी उसके स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। मनुष्यों के दुखों को उसके पूर्व जन्म के कर्मो से जोड़ते हुये भी हेतूवाद के समर्थक बौद्ध धर्म की मूल भावना को व्यक्त करते हुये नागसेन कहते है कि वेदनाओ के आठ कारण हैं– 1) वायु का बिगड़ जाना 2) पित्त का प्रकोप होना 3)कफ का बढ़ जाना 4) सन्निपात का दोष हो जाना, 5) ऋतुओं का बदलना 6) खाने में गड़बड़ होना 7)बाह्य प्रकृति के दूसरे भाव 8) अपने कर्मो का फल होना। गन्दे लोगो के पास रहने से भी कुछ बीमारियॉ हो जाती हैं।[17] [2] स्वच्छ भावना एवं शान्त स्वभाव वाले व्यक्ति को अनेक रोगो से मुक्ति मिल जाती है।[18] अधिक रसास्वादन युक्त भोजन भी पीड़ा का कारण बनता है।[19]

विभिन्न रोगों के लिये विभिन्न प्रकार की औषधियों का प्रयोग किया जाता था। जिनका उल्लेख अनेक ग्रन्थों में मिलता है। त्वचा सम्बन्धि अनेक बीमारियों तथा खुजली, फोडा, आस्त्राव ;बहने वाला फोडाद्ध, शरीर में दुर्गंध आने की बीमारी[20] कुष्ठरोग, गलगण्ड या व्रण आदि के लिए चूर्ण वाली औषधियों का प्रयोग किया गया, छकन अर्थात गोवर और मिट्टी को मिलाकर उसके चूर्ण का प्रयोग त्वचा रोगो के लिये किए जाने का उल्लेख प्राप्त होता है।[21] शरीर में जलन होने पर भसींडा (कमल की जड़) और कमल का प्रयोग[22] एवं विषव्रण अर्थात जहरवाद फोड़ा रोग हो जाने पर जड़ी–बूटियों को पीस कर लेप बना कर लगाने का उल्लेख किया गया है।[23] उदर पीड़ा होने पर गोंद के अत्यन्त लाभकारी होने का उल्लेख मिलता है, हींग की गोदं, हींग की सिपरिका, तक की पत्ती, सज्जुकी, गोंद आदि सभी का प्रयोग उदर पीड़ा मे लाभकारी होता

है।[24] छाछ मे हल्का सा नमक डालकर पीने[25] और रोहिणी नामक मछली का सूप, नवीन घृत मिश्रित शालिभात खाने[26] से उदर पीड़ा शान्त हो जाती है। इसके अतिरिक्त पेट में वात रोग होने पर मधु, घी, शर्करा, मिलाकर देने[27] तिल, तंदुल और मूंग की खिचड़ी खाने का उल्लेख किया गया।[28] ऑख में विकार होने पर अनेक प्रकार के अंजन का प्रयोग किए जाने का उललेख प्राप्त होता है, जैसे काला अंजन, रस अंजन, नदी धारा मे मिला अंजन, गेरू, काजल आदि और इनमें चन्दन, तगर, कालानुसारी, भद्रमुक्ता आदि को पीस कर तैयार किया जाता था।[29] दॉतो के विकार को दूर करने के लिये दातून का प्रयोग करना चाहिए।[30] *विनयपिटक* में उल्लेख मिलता है कि जो दातून करते हैं उन्हें ये पॉच रोग नही होते 1)–ऑखों को नुकसान नही होता, 2)–मुख से दुर्गन्ध नही आती 3)–रस ले जाने वाली नाड़ियॉ शुद्ध रहती है 4)–कफ और पित भोजन में नही लिपट पातें 5)–भोजन में रूची बनी रहती है अर्थात पाचन क्रिया ठीक रहती है। दातुन एक औषधि के रूप में कार्य करता है, जिससे शरीर स्वस्थ बना रहता है और दॉत के मैल का परिष्कार होता है।[31] इसलिये दातुन को उपहार में भी दिए जाने का उल्लेख प्राप्त होता है।[32] शरीर में होने वाले घावों पर मरहम लगाने का उल्लेख मिलता है[33] जो संभवत; हल्दी आदि अन्य औषधियों के मिश्रण से तैयार किया जाता होगा। विष उतारने के लिये शहद, मक्खन, घी, खांड (चर्तुमधु) दिए जाने का उल्लेख किया गया।[34 3]

मिलिन्दपञ्ह[35] एवं *जातक*[36] में अट्ठानवे रोगो का उल्लेख किया गया है जिनमें पाण्डु भी एक रोग है, यह पीड़ा दायक रोग है, इसमें व्यक्ति सूख जाता है किन्तु विभिन्न पथ्यो से इसका उपचार सम्भव बताया गया।[37] गाय, भैंस, बकरी, आदि से प्राप्त दूध, दही, छाछ, घी आदि का प्रयोग औषधि के रूप में किया गया। *विनयपिटक* के *महावग्ग* में उल्लेख मिलता है कि गौमूत्र को औषधि के रूप मे प्रयोग किया गया।[38] *अगुत्तरनिकाय* में उल्लेख है कि हर्रे आदि औषधियों से भावित गौमूत्र एक औषधि के रूप में प्रयोग किया गया और यह औषधि अल्पव्यय साध्य, सुलभ एवं पवित्र मानी गई। अनेक पशुओं से प्राप्त सामग्री यथा मूत्र, चर्बी, मॉस, खून आदि का प्रयोग किया गया। बुद्व अपने शिष्यों को यह अनुमति प्रदान करते है कि पीड़ा होने पर पशुओं की चर्बी एवं मॉस आदि को औषधि के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।[39] रींछ, मछली, सॉप, सुअर, गदह आदि की चर्बी पूर्वाहण में लेकर, समय से पका कर तेल के साथ मिलाकर प्रयोग किया जाए, किन्तु ठीक समय पर न लेने पर ये नुकसानदायक हो सकती हैं।[40] औषधि के रूप में इनके प्रयोग से कोई पाप नही माना गया।[4] *विनयपिटक* में अनेक प्रकार के वृक्षो के विभिन्न भागो से औषधि बनाने का उल्लेख मिलता है। अनेक प्रकार की मूल–हल्दी, अदरक, बच, बचस्थ, अतीस, खस, भद्रमुक्ता (नागरमोथा) आदि का प्रयोग औषधियों में किया जा सकता है। अनेक वृक्षो के कषाय– नीम, कुटज, पटोल (पखल) पग्गव (कडवे फल वाली एक बूटी) नक्तमाल, आदि का कषाय[41] एव नीम, कुटज, पटोल, तुलसी, कपास आदि के पत्तों का प्रयोग विभिन्न रोगो के निवारण के लिये किया जा सकता है।[42] बौद्ध भिक्षुओं के द्वारा अपना जीवन जंगलो एवं पर्वतो पर व्यतीत करने वर्णन मिलता है। वह वहॉ रहकर स्वस्थ जीवन व्यतीत करते थे, अनेक रोगो से मुक्त रहते थे क्योंकि वहॉ रमणीय एवं मनोहर वृक्ष होते है।[43]

साथ साथ विभिन्न प्रकार के लवणों को भी औषधि के रूप में प्रयोग किया जाता था जैसे कि सामुद्रिक नमक, काला नमक, सेधांनमक, वानस्पतिक नमक आदि सभी का प्रयोग औषधि के लिये किया गया।[44] भिक्षुओ का परम कर्तव्य था कि वे सभी अन्य भिक्षुओं के लिये अनुकूल भोजन एवं औषधि को एकत्र करके रखें।[45] धरमेख स्तूप के पास स्थित विहार संख्या षष्टम का उल्लेख एक औषधालय के रूप में किया गया, क्योंकि वहां से कुछ औषधि कूटने के पात्र प्राप्त किए गए है।[46] संभव है कि यह एक सामान्य विहार रहा हो, जिसमें कुछ आयुर्वेद का ज्ञान रखने वाले भिक्षु रहते हो, जिस से ज्ञात होता है कि अनेक भिक्षुक वैध के रूप में रोगियों की सेवा करते थे, रोग से पीड़ित व्यक्ति को सलाह देते थे कि वह वैद्य को सब कुछ सच बताए, अपने लिये उपयुक्त समय का सुझाव देकर उसी समय के अनुसार वैद्य के पास जाए।[47]

जिस प्रकार गर्मी और बुखार से तपने वाले लोग पखें से वायु उत्पन्न कर ताप को दूर करते है वैसे ही देवता और मनुष्य लोग शरीर धातु की पूजा कर बुद्ध के बताए ज्ञान रत्न के अनुसार राग द्वेष और मोह रूपी अग्नि के ताप को दूर करते हैं।[48] बुद्ध के इस विचार से प्रभावित होकर अशोक ने अपने *9वे शिलालेख* में रोगो से मुक्त होने के बाद धम्म मंगल करने का आवहान किया।[49] इस प्रकार मनुष्य को सुखी एवं समृद्ध जीवन व्यतीत करने के लिए विभिन्न प्रकार की आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति का महत्व बौद्ध साहित्य में दिया गया। यह पद्धति पूर्णतः वैज्ञानिक होने, एवं किसी भी रोग का स्थाई उपचार प्रदान करने के कारण तत्कालीन परिस्थितियों के अनुकूल एवं लाभकारी है।

संदर्भ

1. शोध छात्रा, प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरात्तव विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार
2. *ललितविस्तर*, निर्देशक, विनोद चन्द्र पाण्डेय, उ0 प्र0 हिन्दी संस्थान महात्मा गॉधी मार्ग लखनऊ, प्रथम संस्करण, 1984, पृ0–183
3. ठाकुर, वी0 के0, *मेडिकल साइंस एण्ड दि बुद्धिस्ट द्रेडीशन ए नोट आन दि मिलिन्दपञ्हो* आई0 एच0 सी0 प्रोसिडिंग्स, 2001
4. बाशम, ए.एल, *दि वंडर देट वाज इण्डिया* ,न्यूयार्क, 1954 पृ0–499
5. *जातकअट्टकथा*, भाग–3, अनु0 भदन्त आनन्द कौसल्यायन, सम्पा0–डा0 शिव शंकर त्रिपाठी, पृ0 361
6. वही, भाग–3, पृ0–429
7. *मिलिन्दपञ्ह*, भाग–5 सम्पा0 स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, बौद्व भारती ग्रन्थमाला–13, वाराणसी 1979, पृ0–177
8. वही, भाग–5, पृ0–249
9. वही, भाग–5, पृ0–293
10. वही, भाग–3, पृ0–60
11. बाशम, ए. एल,पृ0–499
12. *मिलिन्दपञ्ह*, भाग–5, पृ0–178
13. *विशुद्धिमग्गो*, भाग–1, सम्पा0 संशोधक–स्वामी स्वारिकादास शास्त्री, हिन्दी व्याख्याकार–डा0 तपस्या उपाध्याय, बौद्धभारती वाराणसी, 1998 ई0, पृ0–188
14. वही, भाग–1, पृ0–88
15. *विनयपिटक*, अनु0, सम्पा0–स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, बौद्धभारती–1998, पृ0–218
16. *एपिग्राफी इण्डिका*, भाग–2, पृ0–272 *अशोक का सप्तम स्तम्भ लेख*, बाशम, ए. एल, पृ0–499
17. *विशुद्धिमग्गो*, भाग–1, पृ0–16
18. *जातकअट्ठकथा*, भाग–3, पृ0–296
19. *विशुद्धिमग्गो*, भाग–1, पृ0–140
20. *विशुद्धिमग्गो*, भाग–1, पृ0–49
21. *विनयपिटक*, पृ0–217
22. वही, पृ0–219
23. *विशुद्धिमग्गो*, भाग–1, पृ0–57
24. *विनयपिटक*, पृ0–217
25. वही, पृ0–226

26. *जातकअट्ठकथा,* भाग–1, पृ0–174
27. *विशुद्धिमग्गो,* भाग–1, पृ0–60
28. *विनयपिटक,* पृ0–226
29. *विनयपिटक,* पृ0–218
30. वही, पृ0–444
31. *विशुद्धिमग्गो,* भाग–1, पृ0–266
32. वही, भाग–1, पृ0–26
33. *जातकअट्ठकथा,* भाग–3, पृ0–427
34. *मिलिन्दपञ्ह,* भाग–4, पृ0–81
35. वही, भाग–1, पृ0–481
36. *जातकअट्ठकथा,* भाग–3, पृ0–179
37. वही, भाग–3, पृ0–178
38. *अंगुत्तरनिकाय,* भाग–1, पृ0–391
39. *विनयपिटक,* पृ0–216
40. *विषुद्धिमग्गो,* भाग–1, पृ0–216
41. *विनयपिटक,* पृ0–216
42. *जातकअट्ठकथा,* भाग–3, पृ0–489
43. वही, भाग–3, पृ0–361
44. *विनयपिटक,* पृ0–217
45. *संयुत्तनिकाय,* भाग –3, पृ0–118
46. पाण्डेय, ओमप्रकाश, सारनाथ की कला, भारती प्रकाशन, दुर्गाकुण्ड रोड़, धर्मसंघ, वाराणसी, पृ0–43
47. *विषुद्धिमग्गो,* भाग–1, पृ0–140
48. *मिलिन्दपञ्ह,* भाग–5, पृ0–2,3
49. *एपिग्राफी इण्डिका,* भाग–2*अशोक का नौवा शिलालेख,* , पृ0–469।